ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 153-155

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

पूंजीवादी समाज और गिलिगडु

डॉ0 संदीप वर्मा

राजकीय डिग्री कालेज रानीगंज, प्रतापगढ़ (उ0प्र0), भारत

Received- 25.02. 2022, Revised- 02.03. 2022, Accepted - 05.03.2022 E-mail: arunverma552012@gmail.com

सारांशः – *हम अभिव्यक्त में खालिस व्यक्तिवादी रवैये के अनुगामी होकर सामाजिक सरोकारों के प्रति शब्दशक्ति को प्रज्वलित नहीं कर सकते। बेचैनियों को सामूहिक चेतना का आधार नहीं बना सकते। सामूहिक चेतना के क्षीण न होने देने के लिए जरूरी है–शब्दकर्मी का अपने वजूद की परिभाषा से टकराना। कलम की दरांती को छद्म के पाश से मुक्त करना तॉकि मारक दबाओं की चहु तरफा मार से त्रस्त–ध्वस्त लगभग जड़ावस्था में पहुंच रहे जनमानस की गुलामी की हदें छूती सहिष्णुता को अभिव्यक्ति की तीव्रता दरका सके, उन्हें उनका सही पाठ सौंप सके, उनमें अपेक्षित आंच–ताप जगा सके कि ऐसा होना उनकी नियति नहीं है, न निरपेक्षता उसका समाधान।'*

कुंजीभूत शब्द– खालिस व्यक्तिवादी, शब्दरहित, प्रज्जवलित, सामूहिक चेतना, वजूद, टकराना, जड़ावस्था।

वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था और उससे विकसित वैश्वीकरण की संस्कृति ने मानवीय मूल्यों, मानव जीवन एवं उसकी कार्य संस्कृति पर गहरा असर डाला है। यह प्रभाव नवयुवकों से लेकर बुजुर्गों तक को बदल रहा है। पुराने मानवीय मूल्यों का क्षय जिस क्षिप्र गति से हो रहा है, उसी गति से नवीन मूल्यों का सृजन नहीं हो रहा है। इसके कारण हमारे समाज में पीढ़ीगत असंतोष और मूल्यों का संकट खड़ा हो गया है। इस बदलाव की प्रक्रिया में नवयुवक तो सहजता से ढल जाता है किंतु वह बुजुर्ग जो जीवन भर उन्हीं मूल्यों के आलोक में जीवन व्यतीत करते हैं, इतनी आसानी से उसका त्याग नहीं कर पाते। फलस्वरूप उनके जीवन का उत्तरार्द्ध निराशा, कुंठा, विषाद एवं अवर्णनीय पीड़ा से भर जाता है। प्रतिक्रिया स्वरुप वह ऐसे अप्रत्याशित निर्णय भी लेते हैं जिसकी कल्पना भी समाज नहीं कर सकता। जीवन के इस उत्तरार्द्ध पक्ष को लेकर हिंदी कथा साहित्य में कई उपन्यास लिखे गए। इनमें सुप्रसिद्ध कथाकार निर्मल वर्मा का 'अंतिम अरण्य', हृदयेश का 'चार दरवेश', कृष्णा सोबती का 'समय सरगम' और चित्रा मुद्गल के 'गिलिगडु' का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इन उपन्यासों में मानवीय जीवन के उत्तरार्द्ध पक्ष का यथार्थ एवं प्रामाणिक वर्णन किया गया है। यहां पर मैं अपना विवेचन चित्रा मुद्गल जी के 'गिलिगडु' उपन्यास तक सीमित रखूंगा।

कालक्रम की दृष्टि से गिलिगडु चित्रा जी का तीसरा उपन्यास है। इसके पहले चित्रा जी ने एक जमीन अपनी (1990), आंवा (1999) जैसे ख्यातिलब्ध उपन्यासों की रचना की थी। इन उपन्यासों के माध्यम से चित्रा जी ने हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में स्त्री जीवन के अनेक अनछुए पहलुओं को शब्दवद्ध किया है। इन जीवंत अनुभवों को हमारे समाज में व्यापक स्वीकृति प्राप्त हुई है। चित्रा जी का गिलिगडु उपन्यास 7 मुख्य शीर्षकों और 14 उप–शीर्षकों में विभाजित कुल 144 पृष्ठों का एक लघु उपन्यास है। आकार में यह आंवा (544 पृष्ठ) से एक तिहाई से भी छोटा है। किंतु मानव जीवन के उत्तरार्द्ध पक्ष के प्रामाणिक, यथार्थ एवं खरे अनुभवों के कारण इसमें गागर में सागर भरने का प्रयास किया गया है।

वस्तुतः इस उपन्यास में दो अवकाश प्राप्त बुजुर्गों– कर्नल विष्णु नारायण स्वामी और रिटायर्ड सिविल इंजीनियर बाबू जसवंत सिंह के माध्यम से वर्तमान समय में बुजुर्ग पीढ़ी के जीवन यथार्थ एवं मनोदशाओं का जीवंत वर्णन किया गया है। यह वर्णन इतना यथार्थ, प्रामाणिक एवं अनुभूतिप्रवण है कि वर्णित कथा 'कथा' नहीं, जीवन का भोगा हुआ यथार्थ प्रतीत होती है। यह उपन्यास आधुनिकतावादी जीवन मूल्यों के दबाव में बिखरते रिश्तों की चिर प्रामाणिक गाथा है। यह गाथा किसी व्यक्ति विशेष तक ही सीमित नहीं है। यह हमारे सामाजिक जीवन का एक विद्रूप पक्ष है जो दिखने में जरुर कुरूप लगता है पर है सोलह आने सत्य। इस उपन्यास के बारे में अपना मत देते हुए डॉ.रामचंद्र तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी गद्य साहित्य' में लिखा है कि–''इसमें आज की युवा पीढ़ी द्वारा अपने बुजुर्गों की घोर उपेक्षा और अवमानना का बड़ा ही मार्मिक एवं सजीव चित्रण किया गया है। आज के भरे– पूरे परिवार में भी बुजुर्गों की स्थिति परिवार के पालतू कुत्तों से भी बदतर है। महानगरों के शिक्षित मध्यवर्गीय परिवारों का समकालीन जीवन किस सीमा तक यांत्रिक, आत्मकेंद्रित और अमानवीय हो गया है यह उपन्यास इसका जीवंत दस्तावेज है।''2

उपन्यास में कथा का आरंभ होते ही इस घटना का पूर्वाभास हो जाता है। बाबू जसवंत सिंह जब कानपुर से दिल्ली के लिए निकलते हैं तब उनके मन में विभिन्न प्रकार के सपने और आशाएँ थी, पर दिल्ली में बेटे और बहू के पास पहुंचने पर उन्हें जब वास्तविक स्थिति का पता चलता है तो सब आशाएँ धूमिल और सपने धीरे–धीरे बिखर जाते हैं। इस परिवार में उनकी हैसियत क्या है? उम्र के इस पड़ाव पर पहुंचने के बाद उनको किस प्रकार की मानसिक, शारीरिक समस्याओं का सामना करना

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

पड़ता है इसका बहुत ही प्रभावशाली वर्णन हुआ है–"कानपुर से आते ही उन्हें इस बात से प्रसन्नता हुई थी कि चलो बेटे–बहू ने टॉमी की जिम्मेदारी सौंपकर उन्हें अपनी गृहस्थी की किसी जिम्मेदारी के काबिल तो समझा। अब तो उन्हें यह भी लगने लगा है कि इस घर में वे ही सही अर्थों में किसी के लिए बुजुर्ग हैं तो वह केवल टॉमी है। पोते मलय–निलय के नाज–नखरे उठाने का सुख उनकी थाली का कौर नहीं।"[3]

इस प्रकार बाबू जसवंत सिंह अपने ही परिवार में संवेदनात्मक आश्रय न पाकर उसे बाहर खोजते हैं। समय व्यतीत होने के साथ यह आश्रय उन्हें एक–दूसरे अवकाश प्राप्त कर्नल विष्णु नारायण स्वामी में मिलता है। कर्नल विष्णु नारायण स्वामी की स्थिति भी बाबू जसवंत सिंह से भिन्न नहीं है। यह अलग बात है कि कर्नल विष्णु नारायण स्वामी अपनी वास्तविक परिस्थिति का आभास अपने जीते जी कभी अपने मित्र बाबू जसवंत सिंह को नहीं होने देते। किंतु एक बार जब वह बिना बताए कई दिन घूमने नहीं आते तो उनके मित्र बाबू जसवंत सिंह अत्यंत व्याकुल होते हैं। उनका मन किसी अनिष्ट की आशंका से घिर जाता है। उनकी व्याकुलता इतनी ज्यादा बढ़ जाती है कि वह अपने मित्र का पता पूछते–पूछते उनके घर तक पहुंच जाते हैं। वहाँ जाकर उनका जिस अमानवीय चरम सत्य से साक्षात्कार होता है, उससे उनके जीवन के सभी आदर्श, नैतिकताएँ, मान्यताएँ ध्वस्त हो जाती हैं। जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है। उन्हें यह नहीं समझ में आता कि आखिर हो क्या रहा है। उनके पड़ोसी मिसेज श्रीवास्तव का यह कथन उस मनोदशा की सटीक अभिव्यक्ति करता है–"ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई औलाद नहीं मिसेज श्रीवास्तव का गला भर आया।"[4]

यहाँ पहुंचकर उपन्यास अपने चरम विकास को प्राप्त करता है। वहॉ से लौटने के बाद कथा नायक बाबू जसवंत सिंह आत्म विक्षिप्त अवस्था में अपने घर आते हैं।वे जीवन से ही हताश हो जाते हैं। इस घटना ने उनको अंदर तक इस तरह से झकझोर कर रख दिया कि उन्हें जीवन में जड़ता महसूस होने लगी। उन्हें अपना जीवन जड़ प्रतीत होने लगा। इस जड़ता के साथ जीवन में आगे बढ़ना संभव नहीं है। अपने जीवन में गत्यात्मकता लाने और इस जड़ता को मिटाने के लिए उन्होंने जो फैसला किया वह अपने आप में इस उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। जिसमें इस समस्या के समाधान की तरफ भी लेखिका ने एक संकेत किया है –"वे सदियों से चली आ रही खानदानी परंपरा को बदलना चाहते हैं। उसे नए सिरे से नए हरफों में लिखना चाहते हैं। उन्हें समझ में नहीं आता कि लोग अपनी वसीयत बदलने का जोखिम क्यों नहीं उठाना चाहते। उन्हें क्यों नहीं समझ में आता कि वसीयत बदले बिना उनके जीवन में गति संभव नहीं।"[5]

आधुनिकता के दबाव ने सामाजिक संबंधों के मायने बदल दिए। पुराने समय के समान अब संबंध नैतिक मूल्यों और आदर्शों से परे पूंजी को केंद्र में रखकर निर्धारित होते हैं। हालांकि पैसे का महत्व केवल वर्तमान समय में है– पहले नहीं था,ऐसा नहीं है। पूंजी का महत्व पहले भी था। किंतु आज वह हमारे सामाजिक जीवन का केंद्र बिंदु बन गया है। रीतिकालीन सुप्रसिद्ध कवि 'गंग' ने अपने एक छंद में अपने समय के उपर्युक्त भाव की अत्यंत सटीक अभिव्यक्ति की है–

"मात कहै मेरो पूत सपूत है, मैन कहे मेरो सुंदर भैया। तात कहै मेरो है कुलदीपक,लोक में लाजरु धीर बधैया।
नारि कहै मेरे प्रानपती, अरु जीवन जान की लेंऊ बलैयां। गंग कहे सुन साहि अकब्बर, सोई बड़ो जिन गॉठ रुपैया।"[6]

आधुनिक पूंजीवादी समाज में मानव जीवन के उत्तरार्द्ध पक्ष को लेकर अनेक उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी चलाई है। किंतु अधिकांश कथाकारों ने इस समस्या की जटिलता एवं संवेदनहीनता का ही चित्रण किया है। कोई तर्कसंगत समाधान या रास्ता नहीं दिखाया है,जिससे इस समस्या से ग्रसित व्यक्ति उबर सके। चित्राजी ने एक कदम आगे बढ़कर इस अवकाश प्राप्त पीढ़ी को एक तर्कसंगत मार्ग सुझाया है। जिससे नवीन पीढ़ी को अपने अहंवादी व्यवहार को एक गहरा झटका और सुधारने का एक संदेश भी दिया जा सकता है। यह अलग बात है कि उसको कर पाना प्रत्येक व्यक्ति का सामर्थ्य नहीं है। मानवीय जीवन में व्यक्ति संबंधों से इतना घिरा होता है कि आजीवन व संतान मोह का त्याग नहीं कर पाता। अपने संबंधों में वह परिवार के बाहर या जाति के बाहर अपने परिवार को व्यापक नहीं कर पाता। दूसरे शब्दों में हम कहें तो उसे परिवार का अभिन्न हिस्सा बनाने या मानने से जीवन भर कतराता है। और जिसके लिए अपनी इच्छाओं को मारकर, जरुरतों को घटाकर अपने जीवन का सब कुछ न्यौछावर कर उसके भविष्य का निर्माण करता है वही संतान जीवन के अंतिम पक्ष पर जिस प्रकार से संवेदनाहीन व्यवहार करता है वह अपने आप में बहुत ही दुखद है। जीवन में जब सहारे की सबसे अधिक आवश्यकता होती है उसी समय यह अवकाश प्राप्त पीढ़ी अपने को सबसे अधिक बेसहारा महसूस करती है। अब परिवार में छोटी–छोटी बात के लिए उनकी संवेदनाओं को कुचल देना एक फैशन हो गया है। संवेदनाओं के बार–बार कुचलने से ही यह अवकाश प्राप्त पीढ़ी अपने जीवन धन–संतान का त्याग करने के लिए विवश होती है। अपनी वसीयत बदलने का फैसला वह जीवन के सबसे कठिन क्षणों में लेता है। यही फैसला बाबू जसवंत सिंह ने भी लिया। वसीयत बदलने का जैसा फैसला बाबू जसवंत सिंह ने किया वह भी अपने आप में एक क्रांतिकारी कदम है और उससे भी क्रांतिकारी बात यह है कि वह एक दलित महिला सुंनगुनिया को अपनी संपूर्ण

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

संपत्ति का उत्तराधिकारी घोषित करते हैं। बाबू जसवंत सिंह के मन में इतनी गहरी पीड़ा थी कि वह यहीं तक नहीं रुकते। वह अपनी मृत्यु के बाद शवदाह के समय होने वाले संस्कार कपाल क्रिया करने का अधिकार भी अपने पुत्र नरेंद्र से छीन कर सुंनगुनिया के पुत्र रामरतन या अभिषेक आसरे को देते हुए स्पष्ट कर देते हैं–"नरेंद्र के व्यवहार का अंदाजा उन्हें है। उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार से उसे निश्चय ही धक्का लगेगा। उनके लिए घृणा उपजेगी। संभव है कि वह निश्चय कर ले कि उनके मरणोपरांत बाल उतरवाना तो दूर क्रिया कर्म में भी नहीं शामिल होगा सुंनगुनिया से वे कह कर जाएंगे और उसे अपनी वसीयत में स्पष्ट लिखवा भी देंगे कि सुंनगुनिया का पुत्र रामरतन न अभिषेक आसरे ही उनकी कपाल क्रिया करें। उसे ही वह अपने दाह–संस्कार का अधिकार दे रहे हैं।"[7]

एक पिता जब अपने पुत्र से इतना पीड़ित हो कि वह मरने के बाद होने वाले क्रियाकलाप से भी उसे अलग कर दे तो उसके मन की पीड़ा का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार यह एक सफल एवं कलात्मक उपन्यास कहा जा सकता है जो हमारे आधुनिक समाज के एक अत्यंत ज्वलंत विषय पर लिखा गया है। इस उपन्यास में कथ्य और रूप एक दूसरे के पूरक हैं। भाषा भी कानपुर से लेकर दिल्ली महानगर के बीच के जनजीवन को जीवंत रूप से ब्यक्त करती है। शुक्ल जी के शब्दों में कहना चाहे तो कह सकते हैं कि चित्रा जी की भाषा भी पात्रों के अनुसार रंग बदलने वाली भाषा है। उसमें अपने कथ्य को अत्यंत सहजता, सरलता और जीवंतता के साथ व्यक्त करने का पूर्ण सामर्थ्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लपटें–चित्रा मुद्गल, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003, भूमिका से।
2. हिंदी गद्य साहित्य–डॉ. रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2012, पृष्ठ 270 .
3. गिलिगडु– चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज–नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृष्ठ 10
4. उपर्युक्त पृष्ठ 138.
5. उपर्युक्त पृष्ठ 143.
6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास–डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज–नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृष्ठ 189.
7. गिलिगडु–चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज–नई दिल्ली, संस्करण 2017 पृष्ठ 144.

*****